नये पत्ते

निराला

हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स,
शाहगंज, इलाहाबाद

प्रथमावृत्ति] मार्च १९४६ [मूल्य २)

प्रस्तावना

'नये पत्ते' इधर के पद्यों का संग्रह है। सभी तरह के आधुनिक पद्य है, छन्द कई, मात्रिक, सम और असम। हास्य की भी प्रचुरता, भाषा अधिकांश में बोलचालवाली। पढ़ने पर काव्य की कुञ्जों के अलावा ऊँचे-नीचे फारस-के-जैसे टीले भी-। अधिक मनोरञ्जन और बोधन की निगाह रक्खी गई है कि पाठकों का श्रम सार्थक हो और ज्ञान बढ़े। वे अपनी भाषा की रूपरेखाएँ देखें। इति।

प्रयाग,
७—३—४६

सविनय
'निराला'

कृती-कवि-लेखक

श्रीगङ्गा प्रसाद पाण्डेय, एम० ए० को

सस्नेह

/

विषय-सूचिका

प्रकाशक—
याप्रसाद तिवारी, बी० काम०,
अध्यक्ष हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स,
शाहगंज, इलाहाबाद।

मुद्रक—
गयाप्रसाद तिवारी, बी० काम०,
अध्यक्ष नारायण प्रेस, नारायण बिल्डिंग्स,
शाहगंज, इलाहाबाद।

श्री गङ्गा प्रसाद पाण्डेय, एम० ए०

———

फिर भी माँ का दिल बैठा रहा,
एक चोर घर में पैठा रहा,
सोचती रहती है दिन-रात
कानी की शादी की बात,
मन मसोसकर वह रहती है
जब पड़ोस की कोई कहती है—
"औरत की ज़ात रानी,
ब्याह भला कैसे हो
कानी जो है वह!"
सुनकर कानी का दिल हिल गया,
काँपे कुल अङ्ग,
दाईं आँख से
आँसू भी बह चले माँ के दुख से,
लेकिन वह बाईं आँख कानी
ज्यों-की-त्यों रह गई रखती निगरानी।

कच्चे घर ऊबड़खाबड़, गन्दे
गलियारे, बन्द पड़े कुल धन्धे।
लोग बैठे लेते हैं जमहाई,
ठडी - ठंडी चलती है पुरवाई।
ख़रीफ निराई जा चुकी है, नहीं
करने को रहा कोई काम कहीं।
बारिश से बढ़ी ज्वार, बाजरा, उर्द,
गाँव हरे-भरे कुल, कलां और ख़ुर्द।
लोग रोज़ रात को आल्हा गाते
ढोलक पर, अपना जी बहलाते।
झूला झूलती गाती है सावन
औरतें, "नही आये मनभावन।"
लड़के पैंगे मारते है बढ़ - बढ़कर
गूँज रहा है भरा हुआ अम्बर।
सावन में भतीजा होने को हुआ
पहले से बुला लाई गईं बुआ।
नैहर में घूंघट के उठने से
बुआ जी की जान बची छुटने से।
ब्याह के पहले के प्यारे - प्यारे
गाँव के नज़्ज़ारे जग गये सारे।
याद आईं सहेलियाँ, साथी कुल;
तरह-तरह की हुईं रंगरेलियाँ कुल।

भरी हुई किनारे तक, उमड़ चली,
बहती हुई गाँव के नाले से मिली।
मेढक एक बोलता है जैसे सुकरात,
दूसरा फ़लातूं सुन रहा है बात।
तेज़ हवा से पछांह को झुके
ज्वार के पौधे सिपाही जैसे दिखे।
बनबिलाव मार्लबरो जैसा अड़ा
घोंसले के पास गूलड़ पर चढ़ा।
इसी वक़्त बिल से लोमड़ी निकली,
इधर - उधर देखती आगे बढ़ी।
मुजैल एक बोलती है "पण्डितजी"
मेड़ के किनारे चुगती है पिड़की।
सतभैये एक पेड़ के नीचे
दूसरी पार्टी से लड़ाते हैं पंजे।
एक डाल पर बैठी हुई रुकमिन
बुआ को याद आये पी से मिलनेके दिन।
एक पेड़ पर बये की झोंझें दिखीं
अलग-अलग झूले जैसी कितनी लटकीं।
एक तरफ़ भगा हुआ मोर गया,
झाड़ी से चौगड़ा कूदता निकला।
दूर चला जाता है हिरनों का झुंड,
भैसों के लेवारेवाला मिला कुंड।

नीव के खम्भे हों, पैर कीच में हैं;
जांघ से छाती तक अङ्ग बीच में है।
सोचा, कभी नहाती थीं दिन-दिन भर,
लड़कियों को गाड़ती थी गिन-गिनकर।
विजय का मद आया कि देखे भुजदण्ड,
पहले से और चढ़े हुए, और प्रचंड।
सांस ली बुआ ने, तेज़ चली हवा,
झोंका पुरवाई का एक आ लगा।
बुआ के ऊपर की आम की जो डाल
झोंके से पुरवाई के हिली तत्काल।
क्षमा मागने को मदन जैसा बैठा
डाल पर बड़ा-सा खजोहरा था;
रोयां हर एक उसका तीर फूल का था
सुन्दरी की ओर को तना हुआ।
बुआ के कन्धे पर टूटकर आया,
चाँटे के पड़ते ही पिलौधा हुआ;
रोएँ आये कन्धों, हथेलियों पर,
बांहो पर, पानी पर, बहेलियों पर।
जहां जहा गड़े, ज़ोर की खुजली
उठी, बुआ ताल के बाहर निकली।
निकलते, कुल अगो में पानी के साथ
फैली, खुजलाने लगीं वे दोनों हाथ।

मास्को डायेलाग्स

मेरे नये मित्र हैं श्रीयुत गिडवानी जी,
बहुत - बड़े सोश्यलिस्ट,
"मास्को डायेलाग्स" लेकर आये है मिलने।
मुस्कराकर कहा, "यह मास्को डायेलाग्स है,
सुभाष बाबू ने इसे जेल में मँगाया था,
भेंट किया था मुझको जब थे पहाड़ पर।
'३५ तक, मुश्किल से पिछड़े इस मुल्क में
दो प्रतियाँ आई थीं।"
फिर कहा, "वक्त नहीं मिलता है,
बड़े भाई साहब का बंगला बन रहा है,
देखभाल करता हूँ।"

आंख आंख का कांटा हो गई

मुहोमुह रहे
एक पेड़ पर दो डालों के कांटे जैसे
अपनी - अपनी कली तोलते हुए।
हर्फ़ न आया ;
हवा, पानी और रौशनी के लिए पहले हुए;
साथियों को हाथ मारा;
रस खींचा।
सर उठाये बढ़े चले।
हवा मे गिरह लगाई,
बहुत झेला. बहुत झूमे।

थोड़ों के पेटे में बहुतों को आना पड़ा

धूहो और गुफाओ और पत्थरों के घरों से
आजकल के शहरों तक, दुनियाँ ने चोली बदली।
बिजली और तार और भाप और वायुयान
उसके वाहन हुए।
जान खींची खानों से
कल और कारख़ानों से।
रामराज के पहले के दिन आये।
बानिज के राज ने लछमी को हर लिया।
टापू में ले चलकर रखा और कैद किया।
एक का डका बजा,
बहुतों की आंख झपी।

राजे ने अपनी रखवाली की

राजे ने अपनी रखवाली की;
क़िला बनाकर रहा;
बड़ी - बड़ी फ़ौजें रखीं।
चापलूस कितने सामन्त आये।
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए।
कितने ब्राह्मण आये
पोथियों में जनता को बाँधे हुए।
कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाये,
लेखकों ने लेख लिखे,
ऐतिहासिकों ने इतिहासों के पन्ने भरे,
नाट्यकलाकारों ने कितने नाटक रचे,
रङ्गमञ्च पर खेले।

ख़ुश-ख़बरी

तबला दोनो हाथ आया हथियार,

दरबारी वीर-राग छाया रहा।

सुब्होशाम किरन जैसे तार पर

जीवन-संग्राम हमारा छिड़ा।

सत्य सिनेमा की नटी से नाचा,

पूरब का पाया हिला पश्चिम से,

दुश्मन की जान आई आफ़त में,

गली-गली गले के गोले दगे।

चर्ख़ा चला

वेदों का चर्ख़ा चला,
सदियां गुज़री।
लोग - बाग बसने लगे,
फिर भी चलते रहे।
गुफ़ाओं से घर उठाये।
ऊँचे से नीचे उतरे।
भेड़ों से गायें रखीं।
जंगल से बाग़ और उपवन तैयार किये।
खुली ज़बां बंधने लगी।
वैदिक से सँवर - दी भाषा संस्कृत हुई।

पांचक

दीठ बँधी, अंधेरा उजाला हुआ,
सेंधो का ढेला, शकरपाला हुआ ॥ १ ॥
अपनी राह लगे, नेता काम आया,
हाथ मुहर है, मगर छदाम आया ॥ २ ॥
आदमी हमारा तभी हारा है,
दूसरे के हाथ जब उतारा है ॥ ४ ॥
राह का लगान ग़ैर ने दिया
यानी रास्ता हमारा बन्द किया ॥ ४ ॥
माल हाट में है और भाव नहीं,
जैसे लड़ने को खड़े, दाव नहीं ॥ ५ ॥

मेह जैसे तने रहे,
टपके भी, बरसे भी।
बालों के नीचे पड़ी जनता बलतोड़ हुई।
माल के दलाल ये वैश्य हुए देश के।
सागर भरा हुआ,
लहरों से बहले रहे;
बानिज की राह खोई।
किरनें समन्दर पर कैसी पड़ती दिखीं!
लहरों के झूले झूले,
कितना विहार किया क़ानूनी पानी पर;
बँधे भी खुले रहे।
रात आकाश के तारे गिनते रहे!

डाल देखी, चढ़ा ऊपर पकड़कर,
दम लिया कुछ देर बैठा अकड़कर।
शाख़ पर चढ़ता हुआ, ऊपर गया,
नाक बैठाकर निकाला स्वर नया,
"भूत हों जितने जहाँ जमदूत हों,
अब हमारा घर भरें वे खारुओं।"

नये पत्ते

पहले तूने मुझको खींचा,
दिल लेकर फिर कपड़े-सा फीचा,
अरी, तेरे लिए छोड़ी
बम्हन की पकाई
मैंने घी की कचौड़ी।

थकते हैं;
तन्दुरुस्त छकते हैं।
गाड़ी से चलेंगे।
दर्द कहीं बढ़ा तो मलेंगे
पैर।
आदमी भी साथ हैं।" 'ख़ैर",
मैंने कहा, "चलने की कही,
और देखे हैं पैर।
अपना भी होगा यों ग़ैर?"
गाड़ी आई,
ख़य्याम की जैसी हो रुबाई।
आधी रात को चढ़े
चित्रकूट को बढ़े।
मिला क़िला पेशवों का करवी में
लिखा हुआ जैसे कुछ अरबी में,
रात को ऐसा दिखा
क़िस्मत में जैसे कुछ हो लिखा।
पयस्विनी नदी पड़ी
जैसे लाज से गड़ी।
पानी थोड़ा-थोड़ा सा।
गड़ा जैसे रोड़ासा
मेरे मन में। पूछा

नये पत्ते

पानी की कलकल मे
रामलाल डूबे हुए
यानी बहुत ऊबे हुए।
बैल डालकर जुआ
भग खड़ा हुआ।
बच्चे को बड़े आदमी जैसा
देखता था सांवलिया
जुआ डालकर वहीं खड़ा।
धौले की ओर को चुमकारता बढ़ा
रामलाल का भाई। कड़े हाथ
पकड़ ली धौले की ऐंठी नाथ।
जुए को फिर मोड़कर,
उतरे हुए लोगों की मदद से छोड़कर
राह पर,
बैलों को फिर जोता।
चला धौला अपनी ही पुरानी चाल फिर रोता।
नदी को पारकर
गाड़ी आई राह पर।
स्यारों की जोड़ी मिली।
कहीं कोई झाड़ी खिली
रही होगी, ख़ुशबू से
जान पड़ा। लोग बैठे जैसे चूसे

पावस-समीर से
लहराते धीर जैसे ।
वह है हनुमद्धारा, पञ्चकोसी का पहाड़,
वह वहां है देवाङ्गणा, यहां से पड़ती है आड़
स्फटिक-शिला को, आश्रम
अत्रि-अनसूया का और भी है मनोरम ।
स्वच्छ मन्दाकिनी नदी झरनों से यहीं निकली,
पहाड़ों के बीच पड़ी
बादलों में जैसे बिजली ।
फूट रहे हैं सस्वर
नये स्रोत, झरने नये, गिरियों को फोडकर ।"
आगे बढ़े ।
फले आम बड़े-बड़े झुके हुए देख पड़े
गौदों में या इकले ।
आदमी वहां से कुछ चले हुए आ निकले ।
गाडियां भी जाती थीं,
बैठीं हुईं देवियां इठलाती थीं ।
सीतापुर पास आया ।
एक जगह पेड़ की आ पड़ी घनी-घनी छाया ।
अक्कासी आती हुई देखकर
रामलाल बोले एक डडे से टेककर,
"सर को झुका लीजिएगा,

काली एक नारी गाली देती, खाती ढिकली
देखकर चबूतरा।
जैसे कोई अप्सरा
नाचने लगी हो गलियों से भाव बतलाकर
दोनों हाथ फैलाकर।
मैंने देखा, बड़ा मैला
मन उसका समाज से,
चोट खाई हुई वह रामजी के राज से,
शूद्रों को मिला नहीं
जिनसे कुछ भी कहीं।
ढाढस बँधाया मैंने मीठे-मीठे शब्द कहकर,
देखती रही वह आँसुओं की आखो रह-रहकर।
कुछ दूर बढ़े और रुकने का ठौर था,
गाड़ी खडी हुई, अन्त जहाँ, एक पौर था।
द्वार पर चलकर
रामलाल ने पुकारा। तरुणी ने निकलकर
गाड़ी देखी। बँधी हुई गाय के छू लिये खुर
देखा फिर स्नेहभरी चितवन से जैसे सुर-
वधू हो। फिर चली गई भीतर को धीरे से,
भेजा लड़की को, बोल बोली जो हीरे जैसे—
"चालपाई दाली है,
बैथ जाव, काली है।"

चढ़े चट्टान और हम,
मन्दाकिनी देख पानी भरी हुई मनोरम।
मन्दमन्द ही गति पानी नीचे से बहुत भरा,
देखकर जी हुआ हरा।
जैसे एक झील हो,
झरना - नाला नाद जल बहता सलील हो।
सघन द्रुमों की छाँह
डालों ने चलाये बाँह।
पानी के बीच उठे पत्थरों पर उगीं झाड़ियाँ,
बैठी हुई नाम ही की जानीवाली चिड़ियाँ।
ऊँची-ऊँची उधर हैं पहाड़ियाँ।
किनारे पर वैसे ही आवास और गुफाएं बनीं,
एक झाड़ी देखी घनी।
यात्री नहाते हुए।
इक्के-दुक्के लोग वहाँ आते और जाते हुए।
एक बाबा ने कहा, "भौरादहार है,
"आराम यहाँ कीजिएगा?"
खड़ा हुआ स्फटिक - शिला मैं देखता ही रहा।
आँख पड़ी युवती पर
आई थी जो नहाकर,
गीली धोती सटी हुई भरी देह में, सुघर
उठे पुष्ट तन, दुष्ट मन को मरोड़कर,

कुत्ता भौंकने लगा

आज ठंडक अधिक है।
बाहर ओले पड़ चुके हैं,
एक हफ्ते पहले पाला पड़ा था—
अरहर कुल-की-कुल मर चुकी थी,
हवा हाड़तक बेध जाती है,
गेहूँ के पेड़ ऐंठे खड़े हैं,
खेतिहरों में जान नहीं,
मन मारे दरवाज़े कौड़े ताप रहे हैं
एक दूसरे से गिरे गले बातें करते हुए,
कुहरा छाया हुआ।
ऊपर से हवाबाज़ उड़ गया।

नौकरों के किये हुए;
जब तक इनका कोई
एक आदमी भी होगा,
चूल नहीं बैठने की।

इस प्रकार जब बघार चलती थी,
जमींदार का गोडइत
दोनाली लिये हुए
एक खेत फ़ासले से
गोली चलने लगा।
भीड़ भगने लगी।
कान्स्टेब्ल खड़ा हुआ ललकारता रहा।

झींगुर ने कहा,
"चूँकि हम किसान-सभा के,
भाई जी के मददगार
ज़मीदार ने गोली चलवाई
पुलिस के हुक्म की तामीली को।
ऐसा यह पेच है।"

झींगुर डटकर बोला

नौकरों के किये हुए;
जब तक इनका कोई
एक आदमी भी होगा,
चूल नहीं बैठने की।

इस प्रकार जब बघार चलती थी,
ज़मींदार का गोड़इत
दोनाली लिये हुए
एक खेत फ़ासले से
गोली चलने लगा।
भीड़ भगने लगी।
कान्स्टेब्ल खड़ा हुआ ललकारता रहा।

झींगुर ने कहा,
"चूँकि हम किसान-सभा के,
भाई जी के मददगार
ज़मीदार ने गोली चलवाई
पुलिस के हुक्म की तामीली को।
ऐसा यह पेच है।"

हंस चरणतल तैर रहा है
लघूर्मियों पर,
सुनता हुआ तीव्र - मृदु
झंकृत वीणा के स्वर।
सामगीत गाये आर्यों ने
तुम्हें मानकर,
किया समाहित चित्त
ज्ञान - धन तुम्हें जानकर।
एक तुम्हारी अर्चा
सहज ऋचाओं से की,
चरणों पर पुष्पों की
माला की अञ्जलि दी।
सरल, निरङ्कुश देवी तुम
आर्यों की, विमले,
कौन विश्व में जो
सकाम जीवन में कम ले ?
शुभ्रे, कुल रत्नों की,
रागों की, शब्दों की,
नित्यनवीना हो
वन्दित यद्यपि अब्दों की।
ऋतु के पुष्प
भिन्न गन्धों से बसा दिये है

दृश्यावली सुघर;
दर्शक - दर्शिका मनोहर;
जग के सर से
सरस्वती शत - शत रूपों की
निकली क्षिप्र - मन्द - गति,
रङ्गों की, भूपों की।
बीजों से जैसे अङ्कुर,
अङ्कुर से पल्लव,
पल्लव से शाखा, शाखा से,
द्रुम, द्रुम से नव
पुष्प और फूल
ऐसे बढ़े धान खेतों में
जल पर हरे रेत जैसे,
ज्वारी नेतों में।
अरहर, काकुन, सावां,
उड़द और कोदो की
खेती लहराई।
बन आई है आमो की।
निकले कमल सरों में
और करंबुए लहरे;
आये खग; ऊंचे - ऊंचे
पेड़ो पर ठहरे।

सिमटा पानी खेतों का;
ओठ पर चले हल;
पाँसे खेत, किये जो गये
जोतकर मखमल।
डाले बीज चने के, जौ के
और मटर के,
गेहूँ के, अलसी - राई -
सरसों के, कर से।
ऐसे बाह - बाह की वीणा
बजी सुहाई,
पौधों की रागिनी सजीव
सजी सुखदाई।
सुख के आंसू दुखी
किसानों की जाया के
भर आये आखों में
खेती की माया से।
हरीभरी खेतों की
सरस्वती लहराई,
मग्न किसानों के घर
उन्मद बजी बधाई।
खुली चादनी में डफ
और मजीरे लेकर

मन्द - गन्ध - सञ्चरिता
शीता, ऋता, किन्नरी।
बाग - बाग़, वन - वन, रन की
सुगन्ध - मद पीकर
झूम रही हो हिम - शीकर
पल्लव - पल्लव पर
स्निग्ध पवन में;
शस्य - शीर्ष से उठी हुई तुम
मटर - पुष्प के सौरभ - घन से,
लुटी हुई तुम,
सरसों के पीले पुष्पों की
साड़ी पहने,
अलसी के नीले फूलों की
रेखा जिसमें।

प्रखर शीत के शर से
जग को बेधा तुमने,
हरीतिमा के पत्र - पत्र को
छेदा तुमने।
शीर्ण हुई सरिताएँ;
साधारण जन ठिठुरे;

गीत और वाद्य से
बड़ी सामाजिकता की,
फूलों की अञ्जलि दी,
गङ्गा की सिकता की
वेदी रची; मन्त्र पढकर
घृत - यव लेकर कर
किया स्वस्त्ययन, हवन,
विसर्जन अन्तिम सुन्दर।

नव पल्लवित वसन्त
धरा पर आया सुखकर।
फूटी तुम नव-किसलय - दल से
वृन्त - वृन्त पर।
कूजित पिक-उर-मधुर-कण्ठ;
कुण्ठा सब टूटी;
मुक्त समीरण से धीरता
धरा की छूटी।
पके खेत, सोने के
जैसे अञ्चल लहरे;
नव मनोज के मनोभाव
लोगों में घहरे।

बसी, लगे खलिहान,
सुवेशा जैसे मस्ती।

ग्रीष्म तापमय, लू की
लपटों की दोपहरी
झुलसाती किरणों की,
वर्षों की आ ठहरी,
तुम हो शीतल कूप - सलिल,
जामुन - छाया - तल,
लदे आम के बाग़ों से
जीवन का सम्बल।
गेहूँ, चने, मटर, मडकर
घर आये। अतिशय
दिखा ग्राम में, जहा नहीं
साधन या सञ्चय;
नहीं दीक्षा जन - समाज की,
नहीं प्रीतिकर
शासन, समाराधना
वहीं और भी दुस्तर।
शहरों की बिजली से
झुलसी जनता की रट,

देवी सरस्वती

उड़ते हैं पराग,
झङ्कारी अन्तस्तल
जीवन की वीणा के
तारों के मङ्गल से।
राग - रङ्ग की रामायण
दुख की गाथा से
पूरी हुई; सभाले
जैसे स्वर भाषा के
अधिक मनोहर, वीरजाति के
चित्र सुघरतर
बृहद्रूप से खिले हुए,
मृदु-मृदु वल्कल पर
खिली सभ्यता।
महाभारतीया कुछ बदली,
जैसे भिन्न रूप की,
भिन्न गन्ध की कदली,
सीता और द्रौपद्री,
अर्जुन और राम से,
एक और बहु पतियों के
व्रत और काम से।
भारत की प्रान्तीय
सभ्यता का आलेखन,

सूरदास के गीत,
रसों के स्रोत निरन्तर,
फूटीं सरिताएं,
उमड़ा शशधर से सागर।
मीरा की मानसी
गीतिका सहृदयता की
छवि से भरी हुई
निरवधि कलियों की राखी।
ज्ञानालोक विकीर्ण हुआ
कबीर से, निर्झर
फूटे कितने, ज्ञानदास के,
दादू के स्वर।
तुम्हीं चिरन्तन जीवन की
उन्नायक, भविता,
छवि विश्व की मोहिनी,
कवि की सनयन कविता।

मुक्ति - वर्ग नागरिक,
सर्ग देश के भाव के,
मुदे हुए आश्वासन,
श्वसन विसर्ग - स्राव के,
हृदयोच्छ्वसित वाष्प से
होकर प्रहत निरन्तर
ऊर्ध्व और अध प्रशमन
और क्षोभ के हैं स्वर।
काग्रेस के सेनानी—
वीर सेवकों का दल
नारे लगा रहा है
बढ़ता हुआ धैर्य - बल।
घने बरगदों की कतार,
पर - फड़काते खग,
आख मूद लेने के लिए
विकल सारा जग,
यात्री गङ्गास्नान के लिए
दूर ज़िले के
निकले हैं मजदूर
काम से छुटे किले के;
सुनकर नेहरू जी के
बहनोई की अरथी,

भारत का गर्वित उत्तर,
जनता का नेता,
मानवता का शिरोरत्न,
बहु - ग्रन्थ - प्रणेता।
आई याद विजयलक्ष्मी,
स्वरूप - जीवन का
नवोन्मेष, बैरिस्टर
आर० एस० पण्डित, जिनका
स्पर्धित जीवन रहा,
समर्थित वचन दे दिया
गान्धी जी को, (असहयोग में
भाग फिर लिया,)
मोतीलाल राष्ट्रपति,
वह व्याह से प्रथम ही
देखा जब स्वरूप को
कवि - श्री रवीन्द्र को भी।
वीर जवाहर, टन्डन
और शेरवानी से
एक दर्प जैसे जीवन के
घिरे हुए थे।
वह 'स्वातन्त्र्य - दिवस',
'विजया - लक्ष्मी' - निर्वाचन,

युगावतार परमहंस श्रीरामकृष्णदेव के प्रति

पराधीन भारत की प्रज्ञा
क्षीण हुई जब,
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वर्णत्रय
पश्चिम में गत,
जागे पराशक्ति के वैभव
स्वप्रकाश तब,
आरपार के, बिना तार के
नाद अनाहत।

हे समृद्ध, बहुविध साधन से
सिद्ध हुए तुम,
अक्षर विविध रूप के, एक
बिन्दु में अवसित;

चौथी जूलाई के प्रति

काले बादल कट गये आकाश से
रात को बाधे हुए थे जो समा—
पृथ्वी पर तानी थी चादर, इस तरह।
आंख खोली, जादू की लकड़ी फिरी।
चिड़िया चहकीं, साथ फूलों के उठे
सर,—सितारे जैसे चमके ताज के—
ओस के मोती लगे, स्वागत किया
क्या तुम्हारा झूमकर झुककर। खुली
और फैली दूरतक झीलें, ख़ुशी
जैसे आखें कमलों की फाड़े हुए
दर्श करती हैं तुम्हारा हृदय से।

काली माता

छिप गये तारे गगन के,
बादलों पर चढ़े बादल,
कांपकर घहरा अँधेरा,
गरजते तूफ़ान में, शत
लक्ष्य पागल प्राण, छूटे
जल्द कारागार से—द्रुम
जड़-समेत उखाड़कर, हर
बला पथ की साफ़ करके।
शोर से आ मिला सागर,
शिखर लहरों के पलटते
उठ रहे हैं कृष्ण नभ को,

छलांग मारता चला गया

ज़मीदार के सिपाही की
लाठी का गूला, लोहाबधा,
दरवाज़े गढ़ा कर जाता है।
लोगों के सर
जैसे ढाल देखती आंखों के नीचे गडे हों।
निगह कभी भले-भले
उठने न देनेवाली।
हाथ-पैर किसी तरह मानकर नहीं चले।
अगर किसी जोत या बाग़ की मेड़ को
छूता भी पेड़ हो,
बढ़ा हो किसान भी अधिकार के लिए

डिप्टी साहब आये

बदलू अहिर के दरवाज़े भीड़ है।
गोड़इत कह रहा है,
"ऐसे-वैसे नहीं हैं,
डिप्टी साहब बहादुर तशरीफ ले आये हैं।"
डरकर दबकर बदलू गोड़इत को देखता है।
फिर खँखारकर सारे गाँव को गूँजता हुआ
गोड़इत कह रहा है,
"अहिर के मूसर, ये दई के दूसर हैं,
इनसे एक घाट में भेड़ और भेड़िये
बिना वैरभाव के पानी पी रहे हैं।
इनके साथ और अफसरान हैं,
जैसे दारोग़ा जी,
बीस सेर दूध दोनों घड़ों में जल्द भर।"
"अरे भाई, सुन तो लो," बदलू कह रहा है,

वर्षा

घने - घने बादल हैं,
एक ओर गड़गड़ाते;
पुरवाई चलती है;
जुही फूलों से भरी;
दूरतक हरियाली ज्वार की, अरहर की,
सन, मूग, उड़द और
धानों के हरे खेत;
दूर के पहाड़ों की और घनी नीलिमा;
तालों में करॅवुए;
कोकनद खिले हुए;
ढोर चरते हुए;

कैलाश में शरत्

चले हम घोड़े पर।
सन्यासिश्रेष्ठ श्रीविवेकानन्द जी भी हैं,
श्रीमती श्रीमाताजी और शिष्यशिष्यावर्ग।
साथ श्रेष्ठ राजपुरुष, नागरिक भारत के।
अफ़गानिस्तान की सीमा को पार करके
घोड़ों को छोड़ दिया।
क्योंकि पथ दुर्गम वह, घोड़ों के योग्य नहीं।
चढ़े बड़े बकरों पर।
पथदर्शक साथ है, शासक भी वहा के।
तातारी वीरों को देखा, मुग्ध हो गये।
वहा का इतिहास विश्वविख्यात है,

आल्प्स, ककेसस, अराल;
किन्तु ऐसा समा, ऐसा दृश्य कहीं भी नहीं;
सस्तृत में मूर्तिमान जैसे समाधि हो;
दुर्गा की रूपरेखा यहींसे ली गई हो।
मन अपने आप स्थिर होकर मिट जाता है।
जिस स्थल के लिए कहा,
काम नाश पाता है,
जैसे यह वही हो।
पदतल राक्षस-ताल,
महिषासुर का प्रतीक :
आगे मान - सरोवर,
इससे मिला हुआ।
चोटियों की बर्फ़ पर
किरनें जब पड़ती हैं,
सप्तवर्णी रश्मियाँ
पड़ती हैं तालों पर;
प्रतिक्षण रेशमी रङ्ग बदलता हुआ,
कभी पीला, कभी नीला,
कभी इन्द्रधनुषी है,
छायापात जैसा हुआ;
जैसे किरीटिनी
प्रकृति क्षण-क्षण बाद

कैलाश मे शरत्

उद्गम सुहावना।
एक नदी और है
यहांसे निकली हुई।
दिव्यता के भीतर हम
दिव्य बने ही रहे।
सान्ध्य समय पार हुआ,
मनोहर रात आई।
नाव पर वहीं का
भोजन, जो मेष-मास,
करके शुचि चन्द्र का
स्वागत करने लगे।
गीत-वाद्य होता रहा।
सब जन प्रसन्न हैं।
ऐसा दृश्य जीवन में
और कभी नहीं दिखा।
शरत्-काल; कमलों पर
आया विरोधाभास,
उतरी हैं चांदनी,
मुद चले इन्दीवर,
कोकनद, शतदल;
पर अति-विकसित जो
ज्यों-के-त्यों रह गये।

ख़ून की होली जो खेली*

युवकजनों की है जान;

ख़ून की होली जो खेली।

पाया है लोगों में मान,

ख़ून की होली जो खेली।

रग गये जैसे पलाश;

कुसुम किंशुक के, सुहाये,

कोकनद के पाये प्राण;

ख़ून की होली जो खेली।

निकले क्या कोंपल लाल,

फाग की आग लगी है,

---

* '४६ के विद्यार्थियों के देशप्रेम के सम्मान में—

महगू महगा रहा

आजकल पण्डित जी देश में बिराजते हैं।
माताजी को स्वीज़रलैंड के अस्पताल,
तपेदिक़ के इलाज के लिए छोड़ा है।
बड़ेभारी नेता हैं।
कुइरीपुर गांव में व्याख्यान देने को
आये हैं मोटरपर
लन्डन के ग्रैज्युएट,
एम० ए० और बैरिस्टर,
बड़े बाप के बेटे,
बीसियों भी पर्तों के अन्दर, खुले हुए।
एक-एक पर्त बड़े - बड़े विलायती लोग।
देश की भी बड़ी - बड़ी थातियाँ लिये हुए।

स्वत्व बेचकर विदेशी माल बेचनेवाले;
शहरों के सभासद।
ऐसे ही प्रकार के आकार से घिरे
लोगों में भाषण है।
जब भी अफ़ीम, भाग, गांजा, चरस, चन्डू, चाय,
देशी और विलायती तरह - तरह की शराब
चलती है मुल्क में,
फिर भी आज़ादी की हांक का नशा बड़ा;
लोगों पर चढ़ता है।
विपत्तिया कई हैं घूंस और डंडे की;
उनसे बचने के लिए
रास्ता निकाला है, सभाओं में आते हैं
गांवों के लोग कुल।
एक-एक आ गये।
पण्डितजी काग्रेस के चुनाव पर बोले :
आज़ादी लेते हैं, एक साल और है;
आततायियों से देश पिस-पिसकर मिट गया;
हमको बढ जाना है;
चैन नहीं लेना है जबतक विजयी न हों।
जनता मन्त्रमुग्ध हुई।
ज़मींदार भी बोले जेल हो - आनेवाले,
काग्रेस - उम्मीदवार। सभा विसर्जित हुई।

और बड़े त्याग के निमित्त कमर बांधेंगे,
आयेंगे वे जन भी देश के धरातल पर,
अभी अखबार उनके नाम नहीं छापते।
ऐसा ही पहरा है।"
"तो फिर कैसा होगा?" लुकुआ ने प्रश्न किया।
"जैसा तू लुकुआ है, वैसा ही होना है,
बड़े-बड़े आदमी धन-मान छोड़ेंगे,
तभी देश मुक्त है,
कवि जी ने पढ़ा था, जब तुम बदले नहीं;
अपने मन में कहा मैंने, मै महगू हूँ,
पैरों की धरती आकाश को भी चली जाय,
मै कभी न बदलूंगा, इतना महगा हूँगा।"

रानी और कानी

माँ उसको कहती है रानी
आदर से, जैसा है नाम;
लेकिन उसका उल्टा रूप,
चेचक के दाग, काली, नक-चिप्टी,
गंजा सर, एक आँख कानी।

रानी अब हो गई सयानी,
बीनती है, कांड़ती है, कूटती है, पीसती है,
डलियों के सीले अपने रूखे हाथों मीसती है,
घर बुहारती है, करकट फेंकती है,
और घड़ों भरती है पानी;

खजोहरा

दौडते हैं बादल ये काले काले,
हाईकोर्ट के वकले मतवाले।
जहाँ चाहिए वहाँ नहीं बरसे,
धान सूखे देखकर नहीं तरसे।
जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पडे,
क़हक़हे लगाते हुए टूट पड़े।
फिर भी यह बस्ती है मोद पर
नातिन जैसे नानी की गोद पर;
नाम है हिलगी, बनी है भूचुम्बी
जैसी लौकी की लम्बी तुम्बी।

खजोहरा

मुन्नी - मुन्ने जितने हैं चुन्नी - चुन्ने,

आँखों पर फिरते है सभी टुन्नी-टुन्ने।

कोई नहीं, लड़कियाँ गई ससुराल,

लड़के गये बढ़कर परदेस, यह हाल।

मगर दिल बहलाने के लिए फिलहाल

बुआ नहाने चली वह बाग़ का ताल।

पिछला पहर दिन का, पीली पड़ी धूप;

सारे गांव का हुआ सुनहला रूप।

सब्जे - सब्ज़े पर सोने का पानी चढा,

हुस्न और जमाल जैसे और बढ़ा।

गाँव के किनारे निकल आईं बुआ,

बँधी जगतवाला दांयें मिला कुआ।

नीम से लगा कच्चा चबूतरा,

टिन्ना बैठा काट रहा था दोहरा।

देखकर बुआ को मुस्कराया, पूछा—

"अकेली-अकेली कहां चलीं बुआ?"

गुस्सा आया, बुआ कांपने लगीं,

गालियों से गला नापने लगीं।

आगे बढ़ीं, चढ़े अबरू खमदार,

स्वाभिमान से पडे पहलू दमदार।

बाईं बग़ल कुछ आगे बढ़ीं कि पड़ी

गाँव के किनारे की बडी गड्ही।

खजोहरा

दौड़कर बबूल पर चढ़ा गिरदान,
देखा बुआ ने भवों की तिरछी तान
चौतरफ़ा आम के पेड़ों से घिरा,
बुआ को नहानेवाला ताल मिला।
कितना पुराना, किसका खोदाया हुआ,
गाँव के किसीको यह मालूम न था।
बाघ ताल के, बारिश से छुटकर,
ढाल में अब बदल गये थे कटकर।
मिट्टी भर जाने से ताल उथला था,
डूबने से लोगों को बचाता रहा।
किनारे-किनारे लगे आम के पेड,
दूर से उठाई ऊँची-ऊँची मेड़।
मिट्टी के सबब दूध-ऐसा था पानी
.खुश होकर बुआ ने नहाने की ठानी।
उतरीं जैसे ठाकुर की विजयिनी हों
जिसके दिल में नहीं आज-कल-परसों;
एक प्रेम हो एडी से चोटी तक,
जिसको चहती हैं दुबली से मोटी तक।
बुआ ताल में पैठीं जैसे हथनी,
डर के मारे कांपने लगा पानी;
लहरें भगीं चढ़ने को किनारे पर,
बांधा पानी बुआ ने बाहों से भरकर।

एक छन में जलन सौगुनी बढ़ी,
बुआ जैसे अंगारों पर हों खड़ी;
धोती बदलनी थी, पर न बदल सकीं,
मात नील गाय को करती वे भगीं।
अँधेरा हो आया था, इतनी भलाई,
कोई उनकी न देख पाया भगाई।
चौकड़ी उठाती गाँव को आईं,
दरवाज़े "अम्मा" की आवाज़ें लगाईं।
अम्मा ने जल्द आकर दरवाज़ा खोला,
पूछा, "अरी बिट्टो, तुमको क्या हुआ?"
बुआ ने कहा, "मुआ खजोहरा
नहाते-नहाते मुझको लग गया।"
घी ले आई अम्मा, पूछा, "कहाँ लगे?"
बुआ ने कहा कि नहीं बची जगह।

फिर कहा, "मेरे समाज में बड़े-बड़े आदमी हैं,
एक - से हैं एक मूर्ख;
उनको फसाना है,
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का।
उपन्यास लिखा है,
ज़रा देख दीजिए।
अगर कहीं छप जाय
तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर;
मनमाना रुपया फिर ले लूं इन लोगों से;
नये किसी बंगले में एक प्रेस खोल दूँ;
आप भी वहीं चलें,
चैन की बसी बजे।"
देखा उपन्यास मैंने.
श्रीगणेश में मिला—
"पृय असनेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है।"
इसको फिर रख दिया, देखा "मास्को डायेलाग्स",
देखा गिडवानी को।

आँख आँख का कांटा हो गई

एक तने से कटे,
एक डाल से छूटे।
पत्तियों की हथेलियां हिलाईं,
राहियों को बुलाया,
छाह में बैठालकर तंग नसें ढीली कीं;
फिर बुखार उतारा;
राही जगा,
अपना रास्ता लिया।
आँख आँख का काँटा हो गई।

लहलही धरती पर रेगिस्तान जैसा तपा।

जोत में जल छिपा,

धोखा छिपा, छल छिपा।

बदले - दिमाग़ बढे,

गोल बांधे, घेरे डाले,

अपना मतलब गाठा,

फिर आंखें फेर लीं।

जाल भी ऐसा चला

कि थोड़ों के पेटे में बहुतों को आना पड़ा।

जनता पर जादू चला राजे के समाज का।
लोक-नारियों के लिए रानियाँ आदर्श हुईं।
धर्म का बढ़ावा रहा धोखे से भरा हुआ।
लोहा बजा धर्म पर, सभ्यता के नाम पर।
ख़ून की नदी बही।
आँख-कान मूदकर जनता ने डुबकियाँ लीं।
आँख खुली—राजे ने अपनी रखवाली की।

कैद पासपोर्ट की नहीं तो कभी
देश आधा ख़ाली हो गया होता;
देविकारानी और उदयशङ्कर के
पीछे लगे लोग चले गये होते।

नियम बने, शुद्ध रूप लाये गये,
अथवा जंगली सभ्य हुए वेशवास से।
कडे कोस ऐसे कटे।
खोज हुई, सुख के साधन बढ़े—
जैसे उवटन से साबुन।
वेदों के बाद जाति चार भागों में बटी,
यही रामराज है।
वाल्मीकि ने पहले वेदों की लीक छोडी,
छन्दों में गीत रचे, मन्त्रों को छोड़कर,
मानव को मान दिया,
धरती की प्यारी लड़की सीता के गाने गाये।
कली ज्योति में खिली
मिट्टी से चढती हुई।
"वर्जिन स्वेल","गूड अर्थ", अबके परिणाम है।
कृष्ण ने भी ज़मी पकडी,
इन्द्र की पूजा की जगह
गोवर्धन को पुजाया;
मानवों को, गायों और बैलों को मान दिया।
हल को बलदेव ने हथियार बनाया,
कन्धे पर डाले फिरे।
खेती हरीभरी हुई।
यहाँ तक पहुँचते अभी दुनियां को देर है।

तारे गिनते रहे

राज-चेतना की राह रोककर
लोग खड़े हुए, कामयाब हुए।
दुश्मनों के पैर न जमने दिये।
आपस में मिले रहे, ज़बांदराज़ी न की।
लोक की, समाज की लाज रखी,
बढ़े चले।

राज में बेकारों की आख़िरी साँसें रहीं।
जमींदार चाँद जैसे कर के लिए लगे रहे
देश के आकाश पर,
कपड़े की ज़मी पर।
दूसरे प्रकाश के लिए जैसे चोला पाया।

खेल

जेठ की दुपहर, दिवाकर प्रखरतर,

जली है भू, चली है लू भासकर।

राह निर्जन, मन्द चितवन से खड़ा

एक लडका, बना है छड़का कड़ा।

उम्र नौ-दस-साल की, बस, तोलता

दिल की चढ़कर पकरिये पर बोलता।

तना मोटा था, पडा छोटा झुकर,

बाँह से भरकर चढ़ा, आया उतर।

गर्म पकौड़ी

गर्म पकौड़ी—
ऐ गर्म पकौड़ी।
तेल की भुनी,
नमक-मिर्च की मिली,
ऐ गर्म पकौड़ी!

मेरी जीभ जल गई,
सिसकियाँ निकल रहीं,
लार की बूँदें कितनी टपकीं,
पर दाढ़ तले तुझे दबा ही रक्खा मैंने
कंजूस ने ज्यों कौड़ी।

स्फटिक-शिला

स्फटिक-शिला जाना था ।
रामलाल से कहा ।
उमड़ पड़े रामलाल ।
बोले, "कुछ रुकिए, फ़िलहाल
गाड़ी तैयार नहीं;
यार, कहीं
ठोकर खा जाइएगा ।
कौन कहे, सही-हाथपैर लौट आइएगा ।
कई नाले पड़ते हैं ।
चढ़ते हैं, उतरते हैं ।
नौजवाँ, देहाती, पहलवाँ

स्फटिक-शिला

रामलाल से, "जो कुछ भी दिखता है, छैछा,
ऐसा ही भरा है ?"
"जीता है कौन, कौन मरा है,
मुझको मालूम नहीं,
लेकिन यह है सही—
स्फटिक-शिला में नदी
बहुत काफ़ी गहरी है
और बहुत चौड़ी भी
हालांकि जगह वह यहाँ से बहुत ऊँची है,
मगर वहाँ रहते हैं,"—
रामलाल ने कहा। (ऐसा ही कहते हैं।)
बैल दो थे, सावलिया
और धौला। धौला गरियार था।
बायें जुता। अक्सर चलती-चलती
गाडी मुड़ जाती थी बुरी तरह बायें को।
पूंछ ऐंठकर धौले को फिर - फिर दायें को
हांकता था रामलाल का भाई
ता-ता-ता-ता करता। शहनाई
सुनकर मैं हसता था।
ढाल से उतरकर वह बैल वहा धसता था
इसी समय दलदल में
बायें मुडा।

दमडी के आम हो,
गीले फिर भी, जैसे हों मास सावन या भादों।
राम - राम जपते थे,
काम से यों तपते थे।
मिलीं और गाडियाँ
करवी को जाती हुई; छोटी-छोटी झाडिया।
पौ फटी।
रात कटी।
धूहों से धूए के
वहा के पहाड़ दिखे।
रामलाल ने कहा,
"भरतकूप वह, अहा।
गुप्त गोदावरी वहां, उस पहाड के उधर,
वह देखो, श्रीकामदगिरि सुन्दर;
सावन में जब देखा
मोरों की बादलों से और नीली रही रेखा,
हरे उस पहाड़ पर।
पयस्विनी अररररर
वहती चली जाती है,
त्रेता की बात जैसे कहती चली जाती है।
वडे - बड़े हरे पेड़
करते है जैसे छेड़

ज़रा ध्यान दीजिएगा,
जगह ऊची - खाली है,
कुछ आगे नाली है।"
सीतापुर पारकर पयस्विनी फिर उतरी
गाड़ी पकडे गली
नये गाँव को चली।
ऊँचा चढ़ती हुई, कही पर अडती हुई,
हवेली की बगल से
आगे बढी गाड़ी वह। लिये हुए कुछ फल से
एक दल यात्रियों का जाता हुआ देख पडा।
छोड़कर उसको आगे बढा फिर हमारा लढा।
राह के किनारे खुदरो दरख्त से बँधा हुआ
कच्चा चबूतरा मिला,
कुछ राह घेरे हुए। पत्थर एक रक्खा था
महादेव की जगह पर। भाव मगर पक्का था।—
दखल जैसे जमाना चाहता था कोई अपना,
सत्य को जो बनाये हुए था वहाँ कल्पना।
बायें कुछ ही दूरी पर थी छोटी एक कुटिया,
छोटासा बबूल वह उसकी थी लकुटिया।
धौले ने न जाने कैसे यहाँ ऐसा मारा ज़ोर,
दायें गई गाड़ी, बायें मुडी जैसे, एक कोर
कटी चबूतरे की कि कुटिया से निकली

बैठे कुछ देर हम लड़की व' एकटक
देखती रही हमको छोड़कर बकझक।
बैलों को बाधकर चारापानी करके
स्फटिक-शिला को कुछ तेज चाल हम चले
नये गांव की तरफ़ से। देखा वह प्रमोद-वन
दूसरे किनारे से। हनुमद्धारा को देखकर
खिल गया हमारा मन।

वन था पहाड़ पर,
कहा कि दहाड़कर
शेर जब टूटता है,
तब कांप उठता है
जङ्गल, वे सभी पेड़
जैसे कापते हों भेंड़।
यह बघेलखण्ड है,
बड़ा ही प्रचण्ड है
बाघ यहाँ का। कहा,
आगे वह जानकी ही कुण्ड अब दिख रहा।
हमने नदी पार की,
एक पनचक्की मिली।
अर्जुन के बड़े - बडे
पेड़ खड़े थे अकड़े।
बन्दर वहा के सब

मुझे झूठ जान पड़ता है, कहता यहा।
साधुओं से डर के मारे मैंने नहीं पूछा।
मुझे जान पड़ता है भरा हुआ सब छूंछा।"
रामलाल ने कहा।
मैंने रामलाल को जवाब छोटा-सा दिया।
"होगा जैसा भी किया,"
देखने लगा मै कहकर उस वन को।
भूल जाता है मन को
देखता हुआ पथिक।
चित्त हुआ समाहित।
ऊची-नीची गलियों की झाड़ियों में लगा तिन—
सूखा मटमैला दाग।—बाढ़ के याद आये दिन।
सांप बडे ज़हरीले; टीलों पर रहते है,
बिच्छू, लकड़बग्घे, रीछ, चीते, यहा कहते हैं;
पेडो पर बिचखोपड़।
चिरौंजी, बहेड़ा, हड़
और पेड, बडे बडे,
जङ्गल-के-जङ्गल खड़े।
बडे बाघ और दूर रहते हैं,
पानी पीने रात को आते है, लोग कहते हैं,
या शिकार के लिए,
या कि भूले-भटके।

आयत दृगों का मुख खुला हुआ छोडकर।
बदन कहीं से नहीं कांपता।
कुछ भी संकोच नहीं ढांपता।
वर्तुल उठे हुए उरोजों पर अड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयन्त की, नहीं जैसे कोई चाह
देखने की मुझे और,
कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर।
मेरा मन कांप उठा, याद आई जानकी।
कहा, तुम राम की,
कैसे दिये है दर्शन !

ज़मींदार का सिपाही लट्ठ कन्धे पर डाले
आया और लोगों की ओर देखकर कहा,
"डेरे पर थानेदार आये हैं;
डिप्टी साहब ने चन्दा लगाया है,
एक हफ़्ते के अन्दर देना है।
चलो, बात दे आओ।"
कौड़े से कुछ हटकर
लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था,
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,
और भौंकने लगा,
करुणा से बन्धु खेतिहर को देख-देखकर।

झींगुर डटकर बोला।

गान्धीवादी आये,
तमिलतीन टेढ़े थे;
देर तक, गान्धीवाद क्या है, समझाते रहे।
देश की भक्ति से,
निर्विरोध शक्ति से,
राज अपना होगा;
ज़मींदार, साहूकार अपने कहलाएंगे
शासन की सत्ता हिल जायगी;
हिन्दू और मुसलमान
वैरभाव भूलकर जल्द गले लगेंगे;
जितने उत्पात हैं,

देवी सरस्वती

मानव का मन हिम जलधि,
आत्मा सित शतदल,
जिन दलों पर अमर
सुहाते सुन्दर चरणतल;
वीणा दो हाथों में,
दो में पुस्तक, नीरज;
जादू के जीवन के
शोभन स्वर, जैसे तज्।
नील वसन, शुभ्रतर
ज्योति से खिला हुआ तन,
एक तार से मिला
चराचर से शाश्वत मन।

बैठे गोल बाँधकर
लोग बिछे खेसों पर,
गाने लगे भजन कबीर के,
तुलसिदास के,
धनुषभङ्ग के, और राम के
बनोबास के।
कतकी में गङ्गा-नहान की
बढ़ी उमङ्गें,
सजीं गाड़ियां, चले लोग,
मन चढ़ती चङ्गे।
मेले में, खेती के
कुछ सामान ख़रीदे,
देखे हाथी-घोड़े-रब्बे,
लौटे सीधे।

कुन्दों के विकास के
शुभ्र हास पर उतरीं
ओस-विन्दुओं से शीतल
हेमन्त की परी,
भू की तुम्हीं हरित नभ पर
हो श्वेत मञ्जरी,

प्रतिसन्ध्या समवेत हुए
ग्रामीण सभ्यजन
ढोलक और मजीरे पर
करते है गायन;
फाग हो रहा, उठा रहे है
धुन धमार की,
होली, चैती, लेज,
गा रहे है सवार की।
बौरे आमों की सुगन्ध
धरती पर छाई,
नये वर्ष का हर्ष भरा,
चादनी सुहाई।
रबी कटी आम के तले
खलिहान लगाया,
चना, मटर, जौ, गेहूँ, सरसों
कटकर आया।
पड़ी चारपाई, जिस पर
बैठा तकवाहा
चूल्हा वहीं कहीं लगवाया
जिसने चाहा
ज़रा दूर मेड़ के किनारे,
जैसे वस्ती

उठते कदमों की,
भगती तेज़ी से सरपट,
रुद्र ताल की, भैरव जैसी,
रण की छाया,
नाच रही हो भिन्न जगत की
जैसे काया।
हर चक्र के विवर्तन से
वर्ष का जन्म कल
उगा रहा है गति के
क्रम - उपक्रम का शतदल;
ऊपर तुम नीलाम्बर -
आभा में सित तन्वी
सायक चढ़ी हुई हो
जनता का जी धन्वी।
वाल्मीकि का क्रौञ्च - मिथुन;
व्यास का जन्म - फल;
कालिदास की दशा;
हर्ष का मर्षण उत्कल;
नवालोक मञ्जुलतर;
वकुलों से जैसे तुम
टूटीं शब्द - शब्द पर,
छन्द - छन्द पर, कुङ्कुम

राजनीति का जीवन,
जगती का सम्मोहन ।
श्री-समृद्धि का कालिदास में
अमृतास्वादन,
साहित्यिकता में
धार्मिकता का सम्वादन ।
हर्ष प्रौढ़ता की पीढ़ी,
कविकम्बु स्वयम्भू,
रामायण के मौलिक,
प्राकृत - शम्भु - स्वयम्भू—
भिन्न रूप की राम-कथा के
कविर्मनीषी,
श्रीतुलसी तक सहस्राब्दि के
रविर्मनीषी ।
उसी छन्द में उसी प्रकार
किया है अन्तर
तुलसिदास ने महाकाव्य
लिखकर मन्वन्तर,
भक्ति - भावना से रचना
आलोक - समन्वित
हुई उसी स्वाधीन
चेतना से उत्कल-चित ।

तिलाञ्जलि

धूसर सान्ध्य समय विषमय
 भरता है क्रन्दन;
अन्तरीक्ष से झरता है
 निस्तल अभिनन्दन
नैसर्गिक आत्माओं का;
 प्रशमित नारी - नर
चले आ रहे हैं
 अरथी के साथ मार्ग पर
चरण - मन्द; भाषा के जैसे
 अश्रु - भार रथ,
स्रस्त-वेश, दिग्देश - ज्ञान - गत,
 शिरश्चरण - श्लथ,

हाथ मले, आह की
और टकटकी बांध दी।
पुल के पार रास्ता
बायें कटा दूसरा
स्टेशन से लगकर
गङ्गा के बांध को गया;
चले उसीसे, फिर
रेते से होकर, तटपर;
रची चिता भव्यतर,
बत्तियां जलीं तिमिरहर।
माघ, मकर - संक्रान्ति,
रात्रि का प्रथम प्रहर जब
सविध कृत्य पूरे करके
लौटे सत्वर सब।
जलती हुई चिता तब भी
उठती लपटों को
और स्पष्टतर करती हुई
रहस्य - तटों को
लहक रही है अपराजेय
वीर को लेकर —
बहुभाषाविद्, गायक, कवि,
तेजस्वी, तत्पर,

वह 'राजर्षि', 'महात्मा' की
उपाधियां, वितरण।
कहे कौन, वह सत्य
कहां से कहां गया, 'क्या,
और जवाहर का रिश्ता,
दृढ़ कहां रहा, क्या?
की प्रदक्षिणा मैंने,
सबसे पीछे चलकर,
नमन किया करबद्ध
राष्ट्र का श्रेष्ठ विजय - वर।

अनायास हे, स्नेह - पाश से
विद्ध हुए तुम,
अरचित, रुचि की रचनाओं में
हुए समाहित।
अभिनन्दन के नूतन
बन्दनवार बने तुम,
तरुणों के उच्छ्वास करों से
उत्थित होकर,
जैसे बादल में विद्युत,
व्यञ्जना घने तुम,
खोई सृष्टि सकल
नव-जल-धारा में रोकर।

फिर नूतन प्रभात में
नूतन कर से आये,
ज्योतिर्मय, फिर हँसकर
दिङ्मण्डल पर छाये।

नये पत्ते

कुल निछावर, ज्योति के जीवन, नया
आज अभिनन्दन तुम्हारा, धन्य है।
आज रवि, स्वाधीनता की फूटी किरन,
राह देखी विश्व ने, कैसे खिली,
देशकालिक खोज की, कैसे मिले;
छोड़ा है घर, मित्र, छोड़ी मित्रता।
खोजा तुमको, आवारा मारा फिरा,
गुज़रा दहशत के समन्दर से, कभी
सघन पहले के गहन वन से, लड़ा
हरक़दम पर प्राणों की बाज़ी लिये।
वक़्त वह, हासिल निकाला काम का,
प्यार का, पूजा का, जीवनदान का;
हाथ उठाया, सँवरकर पूरा किया।
फिर तुम्हींने स्वस्ति की बाधी कमर
जनगणों पर मुक्ति की डाली किरण।

देव, चलते ही चलो बेरोकटोक,
विश्व को दुपहर न जबतक घेर ले,
कर तुम्हारा अर ज़मी जबतक न दे,
स्त्री-पुरुष जबतक न देखें चाव से,—
बेड़ियां उनकी कटीं, उल्लास की,
जां नई जबतक न समझें आ गई।

स्वामी विवेकानन्द जी की अगरेज़ी कविता का अनुवाद।

स्पर्श करने के लिये द्रुत,
किरण जैसे अमङ्गल की,
हर तरफ़ से खोलती है
मृत्युछायाएँ सहस्रों
देहवाली घनी काली।
आधि-व्याधि बिखेरती, ऐ,
नाचती पागल हुलसकर
आ, जननि, आ, जननि आ, आ !
नाम है आतङ्क तेरा,
मृत्यु तेरे श्वास में है,
चरण उठकर सर्वदा को
विश्व एक मिटा रहा है,
समय तू है, सर्वनाशिनि,
आ, जननि, आ, जननि, आ, आ !
साहसी, जो चाहता है
दुःख, मिल जाना मरण से,
नाश की गति नाचता है,
तू उसीके पास आई।

स्वामी विवेकानन्द जी की अँगरेज़ी कविता का अनुवाद

गूला उस पेड़ के
तने पर रखकर वह
डट-डटकर देखता है।
आखों में उस अवसर पर,
धुर्धा छा जाती है,
आदमी जैसे कमान,
बन जाता है किसान।
सामाजिक और राजनीतिक सहारे कुल
छुटकर भग जाते हैं।
धर्म-कर्म, लोग-जन
जान पर खेलते हैं।
राक्षस विशालकाय
आध्यात्मिक नसों का
खून चूसता हुआ।
पास का मेढ़क थाले के पानी से उठकर
मूत-मूतकर छलाग मारता चला गया।

"हम भी देख रहे हैं, लछमिन का बाग़ है,
ज़मीदार अमले हैं, बनजर कह रहे हैं,
लछमिन को कहते हैं,
दोगली लड़की है
सारा गाँव जानता है,
रघुवर की कोई नहीं।
इसीलिए आये है।
तुम भी कुछ कहोगे ?"
"जानता नहीं है बे,"
गोड़इत ने पैर रोपा,
'ज़मीदार के है हम,
मालिक का भला जहां वहा है हमारा भला।"
जमकर बदलू ने बदमाश को देखा, फिर
उठा क्रोध से भरकर
और एक घूंसा तानकर नाक पर दिया।
गोड़इत प्रेमीजन था,
ज़मीं चूमने लगा।
तबतक बदलू के कुल तरफ़दार आ गये—
मन्नी कुम्हार, कुल्ली तेली, भकुआ चमार,
लुच्छू नाई, वली कहार, कुल टूट पड़े,
कुछ नहीं हुआ, कुछ नहीं हुआ, होने लगा।
बदल गया रावरङ्ग,
सब लोग सत्य कहने के लिए तुल गये।
तबतक सिपाही थानेदार के भेजे हुए
आये और दाम दे-देकर माल ले गये।
सारा गाँव बाग़ की गवाही में बदल गया,
सही-सही बात कही।

कहीं हिरनों का झुंड;
आम पकते हुए;
बागों में लगी भीड़
मर्दों की औरतों की,
बच्चों की, बुड्ढों की;
आम बीन - बीनकर
पञ्चो बाटते हुए
आमों के हिस्सेदार
गांव-गांव के किसान।
खाने को एक-एक हिस्सा लिये हुए
ज़मीदार लोगों से।
नाले बहते हुए,
नदिया तराई लिये।
घने कास उगे हुए।
युवक अखाड़ों में और ज़ोर करते हुए।
देश के प्रतीक सभी,
देश की भलाई की बातें सोचकर करते।

कुछ दूर आगे चलो, मंगोलिया देश है।
यहा बाद को गये।
यहींके वीर अटीला के घोड़ों की तेज़ टाप
रोम तक बजी थी; नष्ट हो गया था साम्राज्य;
पददलित गान्धार, भारत, पारस्य आदि
सभ्यतम देश सब, वशवेश हुए थे,
यहींका चङ्गेज़, यहींका था तैमूर लङ्ग,
बाबर यहींका, आविष्कार तोपों का किया।
हवा में स्वभाव ही से वीरदर्प भरा हुआ।
पर्वत के शीश पर ऊँची समतल-भूमि
घोड़ों की टापो से आग उगलती हुई।
अस्तु, हम आगे के लिए सब छोड़कर
कैलाश को मुड़े।
आये उस स्थान पर।
तातारी दर्शक ने केवल "कैला" कहा।
पर्वतों के ऊँचे कई शृङ्ग एकसाथ है,
हिमाच्छादित "कैला" है सबसे विशालकाय।
सबसे ऊँचा उठा, अति-शोभन, मनोरम।
पर्वतों की श्रेणी यह औरों से भिन्न है।
जितने ऊचे है ये, उतने मोटे नहीं।
देखा है एवरेस्ट,
काञ्चनजङ्घा, गौरीशङ्कर पर्वत समूह;

साड़ी बदलती हो;
उसके शरीर के
भीतर हमलोग हो।
गिरि के पदमूल में
कोटि - कोटि फूल खिले;
रश्मि के रङ्गों के,
मुख्यतः पीत - नील,
अतिशय सौरभ उनमें।
आगे काश्मीर पड़ा,
होकर हम आये थे,
वह बहुत फीका पड़ा।
ऐसा वायुमण्डल ससार में न फिर मिला।
सारे देशों की हमलोगों ने यात्रा की।
किश्तिया डाली गईं,
उनपर चढ़-चढ़कर हम
मानसर पर चले।
सर्वोत्तम स्थान यह।
इन्दीवर करोड़ों,
करोड़ों अन्य कमल, कोकनद, शतदल
ऐसी सुगन्ध की मदिरा न फिर मिली।
उन्मद विहार किया।
एक ओर सिन्धु, एक ओर ब्रह्मपुत्र का

मदिरा सुगन्ध की
ज्यों-की-त्यों ढलती हुई।
चन्द्र आकाश पर पूरी तरह निकल आया
स्निग्ध वह चन्द्रिका
उतरी सरोवर पर
स्वर्ग की अप्सरा
स्नान करने के लिए
लोक-लोचनों से परे
जिसकी छवि देखकर
कमल वे मुद गये।
सब कुछ स्वर्गीय है,
लोग-जन कहा किये।

नये पत्ते

फागुन की टेढ़ी तान,
खून की होली जो खेली।
खुल गई गीतों की रात,
किरन उतरी है प्रात की;—
हाथ कुसुम - वरदान,
खून की होली जो खेली।
आई सुवेश बहार,
आम - लीची की मञ्जरी;
कटहल की अरघान,
खून की होली जो खेली।
विकच हुए कचनार;
हार पड़े अमलतास के;
पाटल - होठों मुसकान,
खून की होली जो खेली।

राजों के बाज़ू-पकड़, बाप की वकालत से;
कुर्सी रखनेवाले अनुल्लंघ्य विद्या से
देशी जनों के बीच;
लेंड़ी ज़मीदारों को आखों तले रक्खे हुए;
मिलों के मुनाफ़े-खानेवालो के अभिन्न मित्र;
देश के किसानों, मज़दूरों के भी अपने सगे
विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए।
गले का चढ़ाव बोर्झुआज़ी का नहीं गया।
धाक, रूस के बल से ढीली भी, जमी हुई;
आंख पर वही पानी;
स्वर पर वही संवार।
गांव के अधिक जन कूली या किसान हैं;
कुछ पुराने परजे जैसे धोबी, तेली, बढ़ई,
नाई, लोहार, बारी, तरकिहार, चुड़िहार,
बेहना, कुम्हार, डोम, कुइरी, पासी, चमार,
गङ्गापुत्र, पुरोहित, महाब्राह्मण, चौकीदार;
कामकाज, दीवाली-जैसे परवों के दिन
मनो ले जाने वाले पिछली परिपाटी से;
हुए, मरे, ब्याह में दीवाला लाते हुए,
ज़मीदार के वाहन।
वाकी परदेश में कौड़ियों के नौकर हैं
महाजनों के दवैल,

महगू सुनता रहा।
कम्यू को लादता है लकड़ी, कोयला, चपड़ा।
लुकुआ ने महगू से पूछा, "क्यों हो महगू, कुछ
अपनी तो राय दो?
आजकल, कहते हैं, ये भी अपने नहीं?"
महगू ने कहा, "हा, कम्यू में किरिया के
गोली जो लगी थी,
उसका कारण पण्डितजी का शागिर्द है;
रामदास को कांग्रेसमैन बनानेवाला,
जो मिल का मालिक है।
यहा भी वह ज़मीदार, बाजू से लगा ही है।
कहते हैं, इनके रुपये से ये चलते हैं,
कभी-कभी लाखो पर हाथ साफ़ करते हैं।"
लुकुआ घबरा गया। "भला फिर हम कहा जायँ?
महगू से प्रश्न किया।
महगू ने कहा, "एक उड़ी ख़बर सुनी है,
हमारे अपने है यहा बहुत छिपे हुए लोग,
मगर चूँकि अभी ढीला-पोली है देश में,
अख़बार व्यापारियों ही की सम्पत्ति हैं,
राजनीति कड़ी से भी कड़ी चल रही है,
वे सब जन मौन हैं इन्हें देखते हुए;
जब ये कुछ उठेंगे,

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१	नवी पङ्क्ति होगी	×	गुल खिला
४५	पहली	हो	हों
५२	अन्तिम	तन	स्तन
५६	अन्तिम	है	हैं
६०	ग्यारहवीं	"हंसी-हिंडोले"	"झूले हंसी-हिंडोले"
६१	ग्यारहवीं	फूल	फल
८२	अट्ठारहवीं	अर	हर
८४	छठी	आघि	आधि
,,	ग्यारहवीं	चरव	चरण

———